THE TIMES OF INDIA

*Date: 27-04-26*

# Pied Paper

***Govts are recognising newspapers can nourish young minds. But parents have to do their bit***

**TOI Editorials**

Karnataka's recent directive asking schools to begin the day with newspaper reading echoes a sensible idea whose time has returned. As we noted earlier ( https://bitly.cx/pweSP ), reading does more than fill time, it chisels the mind. It sharpens comprehension, strengthens memory pathways, and nudges young brains towards deeper, conceptual thinking. A newspaper adds another layer to this discipline. It is a daily window into the world, compact yet expansive, offering students a guided tour through events, ideas, and realities that shape their lives. Cultivated early, this habit enriches language skills, broadens awareness, and steadies attention in an age of distraction.

That steadying influence is urgently needed. Today's children swim in a relentless digital current, where doomscrolling and social media excess, have been linked to rising anxiety, depression, and fractured sleep cycles. Sleep, the quiet architect of growth, often becomes collateral damage. It is no coincidence that countries like Australia, Denmark, and France are tightening access to social media for younger users. Yet restriction alone is a blunt tool. A more elegant solution lies in substitution: replace passive scrolling with active reading. Newspapers, with their rhythm and reliability, can anchor that shift. They also serve as a safeguard in an era where algorithms often amplify noise over truth. Unlike the chaotic churn of forwards and feeds, newspapers are built on reporting, scrutiny, and editorial judgement. They teach children not just what to think about, but how to think.

Still, policy can only open the door. Habit walks in when it sees itself mirrored at home. If parents are glued to screens, the newspaper becomes ornamental. For this effort to take root, teachers and parents must act in concert, not as enforcers, but as examples. A child who sees reading, will read. And in that quiet daily ritual lies the blueprint for a more thoughtful, grounded society.

---

THE ECONOMIC TIMES

*Date: 27-04-26*

# Rai, Of Light and Shades of India

**ET Editorials**

To look at India is to encounter a Raghu Rai photo. We all carry an internal gallery of his work: the quiet grace of Mother Teresa, the figure of a seated Indira Gandhi surrounded by a phalanx of loyalists/sycophants, the harrowing journey of 1971 East Pakistan/Bangladesh war refugees, or the searing image of a dead child looking out blankly after Bhopal's 1984 gas disaster. Yet, Rai's true vision is found in his online Magnum Photos archives. These frames may not be the first to surface when remembering Rai, but they encapsulate how the accidental photographer captured the shifting kaleidoscope that is India.

Rai's genius lay in a secret he often shared at workshops: discovering the 'sublime framing' before it shifts back into its ordinary dimension. He perfected a way of feeling with the heart and seeing with the eyes, his 'third eye'. In Rai's words, this eye judges neither by intrinsic value nor through aesthetic appeal. Instead, it measures a perceptible intensity — a conviction that if you are not close enough, your photo is simply not good enough. For him, closeness wasn't just about physical distance, but also an emotional proximity that allowed him to see details.

At a media interaction in Kochi some years ago, Rai became the subject instead of observer. Amid flashbulbs, he reminded the room that while technology makes a good photo easy, the unique moment remains an internal discovery. 'Live that moment with a heart open to the creative nature of reality,' he said, adding, 'My finger is always pointed here,' gesturing at his chest. No wonder Rai's greatest contribution was not just iconic snapshots of history, but his ability to find the drama, tension and beauty in the everydayness of an India we often pass without seeing.

---

दैनिक जागरण

***Date: 27-04-26***

# होर्मुज बना आर्थिक युद्ध का अखाड़ा

**शिवकांत शर्मा, ( लेखक बीबीसी हिंदी के पूर्व संपादक हैं )**

राजनीतिक परिवर्तन और ईरान का निरस्त्रीकरण करने के घोषित उद्देश्यों से शुरू किए अमेरिका के युद्ध को ईरान ने बड़ी चतुराई से आर्थिक जंग में बदल दिया है और होर्मुज जलमार्ग इस जंग का अखाड़ा बन गया है। ईरान को अपनी शर्तें मानने पर विवश करने के लिए उसकी सभ्यता मिटाने और पाषाण युग में पहुंचाने जैसी धमकियां देने वाले राष्ट्रपति ट्रंप को अपना अंदाज बदलना पड़ा है। उनके बड़बोलेपन और धमकियों से नाराज ईरान ने दूसरे दौर की शांति वार्ता के लिए अनिच्छा दिखाई। इसके बाद ट्रंप को पहले अपने युद्धविराम की सीमा अनिश्चित काल के लिए बढ़ानी पड़ी और फिर लेबनान और इजरायल के युद्धविराम को भी आगे बढ़ाना पड़ा।

ट्रंप का कहना है कि पाकिस्तानी फील्ड मार्शल आसिम मुनीर और प्रधानमंत्री शहबाज शरीफ ने उनसे अनुरोध किया था कि जब तक ईरान के प्रतिनिधि आपसी झगड़ा निपटाकर कोई साझा प्रस्ताव लेकर नहीं आते तब तक हमले रोक लें। ट्रंप ने कहा भी कि ईरान को वार्ता के लिए नेता तय करने में बेहद कठिनाई हो रही है। जंग में बुरी तरह हार रहे कट्टरपंथी और व्यवहारवादी नेताओं के बीच आपसी लड़ाई छिड़ गई है। उपराष्ट्रपति जेडी वेंस ने भी पहले दौर की बातचीत के अनुभव के आधार पर इसकी पुष्टि की है।

ईरानी नेताओं के बीच आपसी झगड़े की बात को गत सप्ताह की इन अफवाहों से भी बल मिला कि समझौता वार्ताओं में ईरान का नेतृत्व कर रहे मोहम्मद गलीबाफ मुख्य प्रतिनिधि के पद से इस्तीफा दे दिया है। इसकी वजह वार्ताओं की दिशा को लेकर रेवोल्यूशनरी गार्ड के प्रमुख जनरल अहमद वहीदी के साथ गहराते मतभेद बताई गई। बताया जा रहा है कि पहले दौर की बातचीत में कतर ने खाड़ी देशों के 20 जहाजों के बदले ईरान के 20 जहाजों को होर्मुज से रास्ता देने का प्रस्ताव रखा था। गलीबाफ उसके पक्ष में थे, लेकिन रेवोल्यूशनरी गार्ड ने उसे रोक दिया। तब से उनके और ईरान की राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद और मजलिस के कट्टरपंथी सदस्यों के बीच तीखी बयाबाजी चल रही है। उनके साथ-साथ विदेश मंत्री अब्बास अराघजी को भी होर्मुज को खोलने के बयान और वार्ताओं के समर्थन में दिए कुछ बयानों की वजह से आड़े हाथों लिया जा रहा है। मतभेदों की इन अफवाहों को रोकने के लिए राष्ट्रपति मसूद पेजेशकियान को एक बयान जारी करना पड़ा, जिसमें उन्होंने मतभेदों का खंडन करते हुए नेताओं के बीच फौलादी एकता की बात की।

ट्रंप ने हवाई हमलों से ईरान के परमाणु और मिसाइल तंत्र, वायुरक्षा प्रणाली और नौसेना को तो काफी हद तक नष्ट कर दिया, मगर रेवोल्यूशनरी गार्ड और बसीज के तंत्र को और सत्ता पर उसके शिकंजे को ढीला नहीं कर पाए। बमबारी से मची तबाही के कारण जो लोग मुल्लाशाही के विरोध में थे, वे भी अब उसका समर्थन करने लगे हैं। बिजली और पानी के संयंत्रों और पुलों को नष्ट करने से अमेरिका और इजरायल के प्रति रोष और भड़क सकता था और यदि बदले में ईरान खाड़ी के देशों के जल और तेल संयंत्रों पर हमले करता तो पूरे खाड़ी क्षेत्र में हाहाकार मच सकता था। शायद यही सोचकर ट्रंप ने ईरान की आय का मुख्य स्रोत बंद करने के लिए होर्मुज की नाकेबंदी की है। यह चाल उन्होंने जनरल मुनीर की राय पर इस उम्मीद से चली है कि आर्थिक तंगी से या तो ईरान बातचीत के लिए विवश हो जाएगा या फिर आपसी फूट से वहां सत्तापलट हो जाएगा। हालांकि यह चाल तो ईरान को हवाई हमलों से बर्बाद किए बिना भी चली जा सकती थी। जेनेवा वार्ताओं में ईरान परमाणु संवर्धन बंद करने के लिए लगभग तैयार हो गया था। होर्मुज की नाकेबंदी करके उसे मिसाइल कार्यक्रम रोकने और आतंकी गुटों का समर्थन बंद करने के लिए भी तैयार किया जा सकता था।

आलोचकों का कहना है कि ट्रंप ने जैसी भूल अपने मित्र नेतन्याहू के कहे में आकर ईरान पर चढ़ाई करके की थी शायद वैसी ही भूल वे अपने चहेते जनरल मुनीर के बरगलाने में होर्मुज की नाकेबंदी से कर रहे हैं। इससे तो ईरान से कहीं अधिक नुकसान ट्रंप के मित्र खाड़ी के देशों, यूरोप, एशिया और स्वयं अमेरिका का होने वाला है। ट्रंप अक्सर यह कहते सुने जाते हैं कि ईरान के पास कोई पत्ता नहीं बचा है, मगर वे भूल जाते हैं कि ईरान का असली पत्ता वह आर्थिक चोट है, जिसे वह होर्मुज को बंद करके पहुंचा सकता है। उसकी नाकेबंदी करके ट्रंप ने ईरान का पत्ता और मजबूत किया है। युद्ध में भले ईरान को 144 अरब डालर से अधिक का नुकसान हुआ है और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के अनुसार उसकी आर्थिकी 6.1 से 10 प्रतिशत तक घट सकती है, लेकिन अमेरिका के मित्र खाड़ी देशों को 200 अरब डालर से भी अधिक का नुकसान हो चुका है। सबसे बुरी चोट कतर को लगी है, जिसकी आर्थिकी में 8.6 प्रतिशत की गिरावट आ सकती है। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के अनुसार खाड़ी देशों की अर्थव्यवस्था को 5.6 प्रतिशत का नुकसान होगा।

अमेरिका इस लड़ाई में अभी तक 56 अरब डालर खर्च कर चुका है और इसमें यदि तेल, खाद और प्लास्टिक से बने सामान की महंगाई से हुए नुकसान को जोड़ दें तो आंकड़ा एक लाख करोड़ डालर तक जाने का अनुमान है। तेल, खाद और रोजमर्रा के सामान के दाम बढ़ने से भारत की अर्थव्यवस्था को आधे से डेढ़ प्रतिशत तक का नुकसान होने, रुपये का अवमूल्यन होने और उसे बचाने के लिए देश के विदेशी मुद्रा भंडार में कमी आने का खतरा बन गया है। ईरान को पता है कि होर्मुज की नाकेबंदी जितनी लंबी खिंचेगी, अमेरिका और उसके मित्र देशों की आर्थिक चोट उतनी ही गहरी होती जाएगी और ट्रंप पर जल्दी समझौता करने का दबाव बढ़ता जाएगा। ट्रंप की पार्टी को कांग्रेस के मध्यावधि चुनाव में जनता का सामना भी करना है, जो लड़ाई में उलझने और महंगाई बढ़ने से नाराज है। एक मई को लड़ाई के दो महीने भी पूरे हो जाएंगे जिसके बाद कांग्रेस से अनुमति लिए बिना ट्रंप लड़ाई जारी नहीं रख सकते। उनसे यह भी पूछा जाएगा कि उन्होंने लड़ाई से ऐसा क्या हासिल किया है जिसे कूटनीति या आर्थिक नाकेबंदी से नहीं हासिल किया जा सकता था?

---

जनसत्ता

***Date: 27-04-26***

# शोर के विरुद्ध

**संपादकीय**

महानगरों से लेकर छोटे कस्बों तक में दूषित हवा के साथ-साथ ध्वनि प्रदूषण भी एक गंभीर समस्या बनती जा रही है। विभिन्न अध्ययन रपटों में यह बात सामने आई है। कि ज्यादातर बड़े शहरों में शोर का स्तर तय मानकों से काफी अधिक है। इसका मानव स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है और बहरापन, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, नींद की कमी तथा मानसिक तनाव जैसी समस्याएं पैदा हो सकती हैं। इसी के मद्देनजर हाल में दिल्ली प्रदूषण नियंत्रण समिति राष्ट्रीय राजधानी में नियमों को सख्ती से लागू करने के लिए एक मानक संचालन प्रक्रिया शुरू की है। इसके तहत शिकायतों पर समयबद्ध कार्रवाई, उचित निगरानी और जुर्माना अनिवार्य कर दिया गया है। मगर सवाल है कि क्या कागजों में कड़े प्रावधान कर देने से ध्वनि प्रदूषण को रोका जा सकता है? इससे संबंधित नियम-कानून से लेकर अदालतों के आदेश पहले से मौजूद हैं, तो फिर नए निर्देश जारी करने की जरूरत क्यों पड़ी! जाहिर है कि कार्यान्वयन में कई स्तरों पर लापरवाही बरती जा रही है।

गौरतलब है कि ध्वनि प्रदूषण (विनियमन और नियंत्रण) नियम, 2000 को पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के तहत लागू किया गया था। इन नियमों का उद्देश्य लाउडस्पीकर, वाहनों के हार्न, निर्माण कार्य और औद्योगिक मशीनों जैसे सभी स्रोतों से ध्वनि के स्तर को नियंत्रित कर जनस्वास्थ्य तथा पर्यावरण की सुरक्षा करना है। नियमों में विभिन्न क्षेत्रों के लिए दिन और रात के समय ध्वनि के मानक तय किए गए हैं, जिनमें संबंधित प्राधिकारी की पूर्व अनुमति के बिना रात दस

बजे से सुबह छह बजे के बीच लाउडस्पीकर के उपयोग पर प्रतिबंध भी शामिल है। मगर इन नियमों को जमीनी स्तर पर लागू करने का जिम्मा संभाले प्राधिकारियों के दायित्व, निष्पक्षता और ईमानदारी पर अक्सर सवाल उठते रहे हैं। आलम यह है कि कई जगह ध्वनि प्रदूषण को मापने के लिए लगाए गए यंत्र निष्क्रिय पड़े हैं और जहां ये यंत्र काम कर रहे हैं, उनमें दर्ज आंकड़ों का भी शोर कम करने के उपायों में समुचित इस्तेमाल नहीं हो पा रहा है। इससे स्पष्ट है कि जब तक अधिकारियों के स्तर पर जवाबदेही तय नहीं की जाएगी, तब तक किसी भी नियम और दिशा-निर्देश का असर धरातल पर नजर नहीं आएगा।

---

Live हिन्दुस्तान .com

***Date: 27-04-26***

# सोचिए, कामगार पलायन क्यों कर रहे

**आलोक जोशी, ( वरिष्ठ पत्रकार )**

आज की पीढ़ी ने पलायन की बस कहानियां ही पढ़ी थीं, जब तक कि कोरोना काल में बड़े पैमाने पर शहरों से भागते लोगों को अपनी आंखों से नहीं देख लिया। तब कौन सोच सकता था कि कुछ ही साल बाद वही नजारा फिर देखने को मिलेगा? हां, पैमाना उतना बड़ा नहीं है। इन दिनों फिर से पलायन होने लगा है। हालांकि, इस बार कारण कोई बीमारी नहीं, पेट की आग है। पिछले महीने ऐसा पहली बार हुआ कि देश के बड़े शहरों, औद्योगिक व व्यापारिक केंद्रों और बड़े-बड़े निर्माण-स्थलों पर बसे मजदूरों के लिए रोटी का इंतजाम मुश्किल हो गया और वे घर की ओर रवाना हो गए।

इस संकट की जड़ तो भारत से बहुत दूर है। अमेरिका और इजरायल ने ईरान पर हमला किया और जवाबी कार्रवाई में ईरान ने होर्मुज जलमार्ग बंद कर दिया। भारत का 50 फीसदी से ज्यादा कच्चा तेल और गैस इसी रास्ते से आता है। इस आपूर्ति के रुकने का पहला और सबसे गंभीर असर रसोई गैस पर दिखना शुरू हुआ है, लेकिन अब बात सिर्फ रसोई गैस की नहीं रह गई है। यह हमारे शहरी असंगठित श्रम बाजार, विकराल अनौपचारिक अर्थव्यवस्था, सामाजिक सुरक्षा के दावों, आपूर्ति शृंखला और ऊर्जा-निर्भरता की एक साथ विफलता का संकेत है।

सरकार औपचारिक तौर पर कह रही है कि गैस की आपूर्ति सामान्य है, मध्यवर्गीय परिवारों का अनुभव भी ऐसा है। किंतु दिक्कत उन लोगों के लिए है, जिनके पास न पता है, न ठिकाना। जिनके पास गैस के कनेक्शन भी नहीं हैं। इस वक्त देश का सबसे बड़ा संकट या पलायन इन्हीं लोगों की वजह से हो रहा है।

दर्दनाक तस्वीरें गुजरात से आई हैं। पिछले दिनों सूरत स्टेशन पर हजारों प्रवासी मजदूरों की भीड़, लंबी-लंबी लाइनों और बेतरह भरी हुई ट्रेनों की खबरें आईं। अखबारों में भी खबरें आईं कि सूरत के टेक्सटाइल व पावरलूम उद्योगों में काम करनेवाले मजदूर वापस लौट रहे हैं, क्योंकि खाने की सामग्री भी महंगी हो गई है और गैस या तो मिल नहीं रही या उसके भाव आसमान पर हैं। साउथ गुजरात चैंबर ऑफ कॉमर्स ने भी जिला प्रशासन से शिकायत की कि घरेलू गैस की कमी से

प्रवासी मजदूर बहुत परेशान हैं। गुजरात के लिए यह समस्या बड़ी है, क्योंकि उसका विकास मॉडल पिछड़े इलाकों से आने वाले सस्ते मजदूरों पर ही टिका हुआ है। हालांकि, महाराष्ट्र के नासिक, पुणे, औरंगाबाद जैसे आर्थिक केंद्रों और तमिलनाडु के चेन्नई व कोयंबटूर जैसे शहरों से भी बहुत से मजदूर अपने-अपने गांव-शहरों की तरफ रवाना हुए हैं।

समझना जरूरी है कि यह दिक्कत क्यों हो रही है? केंद्र सरकार का दावा है कि मार्च की शुरुआत से अब तक 18 करोड़ गैस सिलेंडर लोगों के घरों तक पहुंचाए गए हैं। ऑनलाइन बुकिंग 97 प्रतिशत तक पहुंच चुकी है और गैस सिलेंडरों की कालाबाजारी रोकने के लिए डिलिवरी ऑथेंटिकेशन कोड जरूरी कर दिया गया है। घरेलू गैस उपभोक्ता गवाही देंगे कि ये उपाय काम कर रहे हैं। किंतु यही उपाय उस अनौपचारिक गैस बाजार पर चोट करते हैं, जिस पर शहरों में बसे गरीबों की बड़ी आबादी निर्भर है। इनके पास अपने नाम पर कनेक्शन नहीं है और न ही खाना पकाने के लिए बिजली के हीटर या इंडक्शन जैसा कोई विकल्प है। मतलब साफ है, औपचारिक और संगठित व्यवस्था को बचाए रखने की कीमत असंगठित और अनौपचारिक मजदूर तबके ने चुकाई है।

दिल्ली-एनसीआर और नोएडा में इसी किस्से का एक अलग अध्याय लिखा जा चुका है। मार्च के अंत में ही रिपोर्ट आने लगी थी कि नोएडा और ग्रेटर नोएडा के छोटे कारखानों से कई मजदूर गांव लौटने लगे हैं। उन्हें छोटे सिलेंडर मिल नहीं रहे थे या ब्लैक में कई गुना दाम पर मिल रहे थे। बाद में वही मजदूरी, महंगाई और काम की शर्तों को लेकर मजदूरों का गुस्सा सड़कों पर निकला। बात सिर्फ औद्योगिक मजदूरों पर भी नहीं रुकती। नोएडा में घरों में काम करने वाली महिलाओं ने जिस अंदाज में प्रदर्शन किए, वह साफ दिखाता है कि उनके लिए भी जिंदगी चलाना मुश्किल हो रहा है। इसके साथ ही गरीबों की यह समस्या शहरी मध्यवर्ग की समस्या में बदल जाती है।

जिन परिवारों में दो या उससे ज्यादा सदस्य कमाने में लगे हैं और घर का काम पूरी तरह सहायकों के भरोसे है, उनके लिए तो यह बड़ा संकट है। अगर हाउस हेल्प गायब हो जाएं, तो जिंदगी की लय ही टूट जाती है। दूसरी तरफ, दिल्ली-मुंबई जैसे बड़े शहरों में 'पेइंग गेस्ट' बनकर रह रहे लाखों नवयुवक और नवयुवतियां भी ऐसी ही मुसीबत में हैं। उनके गैस सिलेेंडर भी अक्सर ब्लैक में ही आते हैं।

जाहिर है, आपूर्ति शृंखला का टूटना भले ही नीचे से शुरू हो, लेकिन उसका असर ऊपर तक जा रहा है। एक तरफ, तमाम कारखानों के पास अब मजदूर नहीं हैं, दूसरी तरफ, शहरी मध्यवर्ग की लाइफलाइन, यानी उनके घरों में काम करने वाले सहायक गायब हो रहे हैं। एक तरह से देखें, तो यह एलपीजी की किल्लत नहीं, बल्कि शहरीकरण के भीतर छिपे अन्याय का पर्दाफाश है। शहरों में बसे भद्र लोग और नीति-नियंता यह मानकर चलते हैं कि सस्ते गरीब मजदूर हमेशा उनकी सेवा के लिए उपलब्ध रहेंगे, भले ही उन्हें जानवरों जैसी जिंदगी बितानी पड़े। सिलेंडर की किल्लत के एक झटके ने दिखा दिया कि यह मॉडल कितना कमजोर है।

भारत के ऊर्जा संकट का दीर्घकालीन हल क्या होगा, वह तो एक अलग और बड़ा सवाल है। हालांकि, इसके दो तात्कालिक उपाय हैं- एक, सरकार के यह हाथ में है कि उसे गैस की आपूर्ति बढ़ाने के काम के साथ-साथ छोटे सिलेंडरों के वितरण की स्थायी और लचीली व्यवस्था बनानी चाहिए। यह जरूरी है उन लोगों को सहारा देने के लिए, जिनके पास स्थायी पता नहीं है, कागजात नहीं हैं और शायद बड़े सिलेंडर को खरीदने और भरवाने के पैसे भी नहीं हैं।

दूसरा उपाय खुद मध्यवर्ग के हाथ में है। आप देख सकते हैं कि जिन परिवारों में घरेलू सहायक के रहने-खाने का इंतजाम घर के साथ ही है, वहां पर ऐसा संकट नहीं दिख रहा। साफ है, आपको अपने लिए काम करने वालों की उतनी ही परवाह करनी होगी, जितनी वे आपकी करते हैं। यह मजबूत रिश्ता किसी भी सरकारी नियम और नीति से ज्यादा कारगर साबित होता है। यही फॉर्मूला फैक्टरी मालिकों पर भी लागू होता है। जो लोग अपने मजदूरों के रहने-खाने का इंतजाम करेंगे, उनके लिए ऐसी मुश्किलों से निपटना काफी आसान होगा।